DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal (2018), 12, 52-55

विज्ञान और आध्यात्मिकता– अवधारणा एवं महत्त्व

गौतम वंदना सिंह

सारांश

वर्तमान समय में विज्ञान ने अपने वैभवकारी स्वरूप एवं चमत्कृत कर देने वाली उपलब्धियों के बलबूते समूची मानव सभ्यता को अपने आकर्षण कि पॉश में बाँध लिया है। परन्तु फिर भी यह एक कठिन सच है कि विज्ञान की सीढ़ियों से मनुष्य जीवन को पूर्णता एवं समग्रता तक नहीं ले जाया जा सकता। चूंकि मनुष्य एक जैविक प्राणी होने के साथ–साथ एक आत्मिक और आध्यात्मिक सत्ता भी है। उसके जीवन की गहन सूक्ष्मता में आत्मतत्त्व की प्रगाढ़ अनुभूति का निवास है जहाँ तक पहुँचना केवल आध्यात्म द्वारा ही सम्भव है। मनुष्य जीवन की वास्तविक मांग आत्मिक संतुष्टि है जिसे उसे स्वयं ही खोजना पड़ता है। आज का आधुनिक विज्ञान उसकी इस दिशा में अथवा अन्तयात्रा में कुछ ज्यादा मदद नहीं कर सकता है उसे सार्थक सहयोग यदि प्राप्त हो सकता है तो वह– आत्म विद्या से जिसे ऋषियों ने अध्यात्म विज्ञान के रूप में विकसित बनाया है। व्यावहारिक दृष्टि से भी हमारे जीवन में उपयोगिता एवं विकास की दृष्टि से विज्ञान और अध्यात्म दोनों आवश्यक और अनिवार्य है। यह वर्तमान समय की मांग है कि विज्ञान और आध्यात्म विद्या को सर्वथा एक दूसरे से भिन्न और अलग समझना छोड़कर दोनों की पूरकता और समन्वय में जीवन की सम्पूर्णता को परखा जाये। ऐसे में आवश्यकता है विज्ञान के महत्त्व को भी समझा जाये तथा अध्यात्म की गुढ़ अनुभूति जन्य ज्ञान को भी स्वीकारा और अपनाया जाये। मनुष्य का अस्तित्व शरीर, मन और आत्मा की संयुक्त संरचना है। ज्ञान–विज्ञान की अलग–अलग विधायें, शास्त्र इसी संरचना को अपनी दृष्टि विशेष से देखते और समझते आये हैं, और आंशिक रूप से ही सभी, परन्तु सभी का अपना महत्व और वैशिष्ट्य भी है। अतः जीवन विकास में योगदान की दृष्टि से किसी को बड़ा या छोटा न मानकर सभी का महत्त्व समान रूप से स्वीकारा जाना चाहिए। विज्ञान जड़ प्रकृति के नियमों पर कार्य करता है तो अध्यात्म चेतन प्रकृति के सिद्धान्तों की व्याख्या करता है। हमारा जीवन और ये सारी सृष्टि का संचालन जड़ और चेतन दोनों तत्त्वों के संयोग और पूरकता में ही सम्भव होता है। इनमें से किसी एक को महत्व देने से जीवन में एकांगीकता पनपती है। जिसका असर व्यक्तिगत जीवन से लेकर समूची समाज, संस्कृति और सभ्यता पर दिखाई देता है। विश्व सभ्यताओं के इतिहास में इस एकांगीपन के उदाहरण भरे पड़े हैं। बुद्धिवाद, विज्ञानवाद का ताण्डव और धर्मवाद एवं अध्यात्मवाद की एकांगी अन्धेरी गुफाँओं में अनेक पीढ़ियों का उत्सर्ग करने के उपरान्त भी मनुष्य जीवन को पूर्ण रूपेन शांति, सफलता और सन्तुष्टि नहीं मिल पायी है। अतः दोनों के एकांगीपन को दूर कर समन्वय एवं पूरकता की दृष्टि देखा जाना विश्व सभ्यता के लिए एक नया समग्र जीवन दर्शन का मार्ग प्रशस्त करता है।

कुट शब्द – विज्ञान, अध्यात्म, समन्वय, जड एवं चेतन।

विज्ञान और अध्यात्म अन्योन्याश्रित है, एक–दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की गति नहीं। विज्ञान हमारे साधनों को बढ़ाता है और अध्यात्म आत्मा को। आत्मा को खोकर साधनों की मात्रा कितनी ही बढ़ी–चढ़ी क्यों न हो उनसे मनुष्य भोगी, व्यसनी, अहंकारी और स्वार्थी ही बनेगा। महत्वाकांक्षाएँ मनुष्य को नीति तक सीमित नहीं रहने देतीं। आकुल–व्याकुल व्यक्ति कुछ भी कर गुजरता है, उसे अनीति अपनाने और कुकर्म करने में भी कोई झिझक नहीं होती। अध्यात्म चिन्तन को, आकांक्षाओं को, क्रिया को उन मर्यादाओं की परिधि में बाँधकर रखता है जिसमें व्यक्ति का चरित्र और समाज का व्यवस्था क्रम अक्षुण्ण बना रह सके। अस्तु दोनों ही अपने–अपने क्षेत्र के समान रूप से उपयोगी हैं। मनुष्य का चिन्तन सर्वांगीण होना चाहिए न कि एकांगी। रोटी के बिना संन्यासी भी नहीं जी सकता। वह संसार को असार, माया, मिथ्या कहता भले ही रहे पर उन पदार्थों के बिना शरीर का एक दिन का भी गुजारा नहीं जो माया के अन्तर्गत आते हैं। पिछले दिनों मनुष्य ब्रह्मवाद के बढ़े–चढ़े प्रतिपादन करते रहे हैं और भौतिक क्षमताओं को उपेक्षित बनाये रहे हैं। फलतः उस एक–पक्षीय प्रगति ने मनुष्य को भौतिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया।[1] अतः अध्यात्म जगत् में विज्ञान की स्वीकारोक्ति जरूरी है। ऐसे ही विज्ञान जगत् में भी अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने हेतु अध्यात्म की ओर गति आवश्यक है।

विज्ञान और अध्यात्म का सम्प्रत्यय

भौतिक पदार्थों की विवेचना एवं उपलब्धि प्रस्तुत करने वाला विज्ञान मिथ्या नहीं हो सकता। वह सत्य है। सत्य के नियम होते हैं–झूठ के नहीं। विज्ञान नियमों पर आधारित है। स्वप्न का, मिथ्या का कोई नियम नहीं। यदि यह संसार मिथ्या होता तो उसमें कोई नियम क्रम दिखायी न पड़ता। पिछले दिनों मनुष्य ने

वैज्ञानिक दृष्टि गवाँ दी और विवेक रहित श्रद्धा को छाती से लगाये रहे। मन्त्रों की अथवा देवताओं की शक्ति से सारे संकट पार होने की बात सोची जाती रही फलतः आक्रमणकारी सरलतापूर्वक सफल होते चले गए। यदि मनुष्य के पास वैज्ञानिक दृष्टि होती तो यथार्थ चिन्तन सम्भव होता। आत्मा को परिष्कृत बनाने के लिए अध्यात्म को, शरीर को और समाज को परिष्कृत करने के लिए समर्थता की आवश्यकता अनुभव करते और तदनुरूप साधन जुटाते।

वैज्ञानिक दृष्टि का अर्थ है– मान्यताओं, आग्रहों, आस्थाओं की गुलामी से छुटकारा पाकर यथार्थता को समझ सकने योग्य विवेक का अवलम्बन[2] उसमें अन्धविश्वासों और परम्पराओं के लिए कोई स्थान नहीं। तथ्यों और प्रमाणों की कसौटी पर जो खरा उतरे उसी को अपनाना वस्तुतः सत्य की खोज है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि हटा देने पर अध्यात्म भी निष्प्राण ही नहीं, भ्रमोत्पादक और भय सम्वर्धक बन जाता है। मनुष्य निष्ठावान बनें, श्रद्धालु रहें, पर वह सब विवेक युक्त होना चाहिए। बुद्धि बेचकर मात्र परम्परावादी आग्रह अपनाये रहने से अध्यात्म का उद्देश्य और लाभ प्राप्त नहीं हो सकता है। अतः अध्यात्म भी चेतना जगत् का वह विज्ञान है जिसमें तर्क, तथ्य और विवेकशीलता का प्रमुख स्थान है। इसी आधार पर इसकी प्रामाणिकता का निर्धारण होता आया है।

विज्ञान एवं अध्यात्म का महत्व

विज्ञान एवं धर्म अध्यात्म को एक–दूसरे का विरोधी तब कहा जाता है, जब यथार्थ चिन्तन की अवज्ञा करके किन्हीं पूर्वाग्रहों पर बल दिया जा रहा हो। मनुष्य यह भूल जाते हैं कि प्रगति की ओर वह क्रमशः ही बढ़े हैं और यह अनादि काल से चला आ रहा क्रम अनन्त काल तक चलता रहेगा।[3] जो पिछले लोगों ने सोचा या किया था वह अन्तिम था उसमें सुधार की गुंजाइश नहीं, यह मान बैठने से प्रगति पथ अवरूद्ध हो जाता है और सत्य की खोज के लिए बढ़ते चलने वाले कदम रूक जाते हैं। विज्ञान ने अपने को मूर्त पूजा से मुक्त रखा है और पिछली जानकारियों से लाभ उठा कर आगे की उपलब्धियों के लिए प्रयास जारी रखा है। अस्तु वह क्रमशः अधिकाधिक सफल समुन्नत होता चला गया। अध्यात्म ने ऐसा नहीं किया उसने बाबा वाक्यं प्रमाणम् की नीति अपनायी। समय आगे बढ़ गया, पर आग्रह शीलता की बेड़ियों ने मनुष्य को उन्हीं मान्यताओं के साथ जकड़े रखा जो भूतकाल की तरह अब उपयोगी नहीं समझी जाती। पूर्वजों से आगे की बात सोचना उनका अपमान करना है ऐसा सोचना क्रमशः आगे बढ़ते चले जाने के सार्वभौम नियम को झुठला देना है। अध्यात्म में आगे बढ़ने के लिए भी आस्थाओं, मान्यताओं तथा विश्वासों का वैज्ञानिक कसौटी पर मूल्यांकन होना चाहिए।

यूरोप में इंग्लैण्ड़ के न्यूटन, इटली के गैलीलियो, पोलैण्ड के केपलर आदि वैज्ञानिकों ने अपने समय में क्रान्तिकारी वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादन किए। धार्मिक मान्यताओं में भारी सुधार प्रस्तुत कराने वाले मनीषियों में जर्मनी के लूथर, स्विट्जरलैण्ड के ज्विंगी, फ्रांस के केल्विन, स्कॉटलैण्ड के जोन नोक्स आदि अग्रणी रहे हैं, न केवल भारत में भी ऐसे ही अनेकानेक उदाहरण हैं वरन् समस्त विश्व में अपने ढंग से यह सुधारवादी प्रक्रिया चलती रही है।[4] भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में सदा ही प्रगति की कुसमुसाहट जारी रही है।[5] उसी ने मानव को उस स्तर तक पहुँचाया है जिसमें कि वह आज है। जूलियन हक्सले ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि विज्ञान की तरह ही अध्यात्म का आधार भी तथ्यों को रखा जाना चाहिए। लोभ और भय से उसे मुक्त किया जाना चाहिए, काल्पनिक मान्यताओं का निराकरण होना चाहिए, और चेतना को परिष्कृत करने की उसकी मूलदिशा एवं क्षमता को प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

विचार और कार्य, विश्वास और श्रद्धा, शंका और निराशा, ज्ञान और कर्त्तव्य, व्यक्ति और समाज, पदार्थ और आत्मा, जाति और सभ्यता, कथा और इतिहास, प्रेस और घृणा, त्याग और भक्ति, जैसे असंख्य प्रश्न अभी अनिर्णीत पड़े हैं। इस सन्दर्भ में अध्यात्म द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखकर शोध करना चाहिए और जो निष्कर्ष सामने आये उनसे मानव जाति को लाभान्वित करना चाहिए। सामाजिक परिस्थितियाँ या तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो दबाव देती हैं उनसे वैज्ञानिक अपने खोज प्रयासों के लिए दिशा एवं प्रेरणा उपलब्ध करते हैं। ठीक इसी प्रकार अध्यात्म वेत्ताओं को भी समय की माँग को पूरा करने के लिए विचारणा एवं श्रद्धा के शक्तिशाली चेतना तत्वों को नये सिरे से ढालना पड़ता है और उस प्रयोग का प्रचलन योजनाबद्ध रूप से करना पड़ता है। विज्ञान और अध्यात्म वस्तुतः मानव जीवन के दो ऐसे पहलू हैं जो अविच्छिन्न रूप से एक–दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। उन्हें परस्पर विरोधी न तो माना जा सकता है और न रखा जाता है यदि वास्तविक प्रगति की सुस्थिर सुख–शान्ति की अपेक्षा हो तो इन दोनों महान् शक्ति स्त्रोतों को गाड़ी के दो पहियों की तरह समन्वित और गतिशील रहने के लिए बाध्य करना होगा।[6]

विज्ञान एवं अध्यात्म में समन्वय

बीसवीं शताब्दी के जीवशास्त्र और अध्यात्म दोनों मनुष्य को अद्वितीय कहते हैं। आत्माभास को स्नायुविज्ञान मनुष्य की सम्पूर्ण प्रकृति पर सत्ता का कारण मानता है। उसे प्रकृति ने मनुष्य के मस्तिष्क का विकासक्रम करके बनाया है। मनुष्य के क्रमविकास के शुरू में जो धुँधला ही था वो आभास अब, जैसा कि भारतीय तत्वचिंतन कहता है, नए रूपों में प्रकट हुआ है जिससे मनुष्य के आगे के विकास की नियति और उसके दर्शन व प्रकृति की अनेक

महान सम्भावनाएँ बन जाती हैं। आज की दुनिया का निर्माण विज्ञान ने किया है।[7] आधुनिक विचार का अर्थ है वैज्ञानिक विचार। विज्ञान का लक्ष्य प्रकृति और मनुष्य के अनुभव को जानना है। कार्ल पिअरसन ने कहा है तथ्यों की विभक्ति, उनका क्रम और तुलनात्मक महत्व ही विज्ञान का कार्य है, इन तथ्यों से निष्कर्ष प्राप्त करना ही वैज्ञानिक बुद्धिमत्ता है। इसी क्षमता ने प्रकृति के सभी क्षेत्रों से सत्य का अनावरण सम्भव किया ताकि प्रकृति की शक्तियों को मानव सेवा का माध्यम बनाए। विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक शोधों द्वारा जो बल प्राप्त हुए हैं– भौतिकी, रसायनशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र, जीवविज्ञान व मनोविज्ञान और उनके अधीन क्षेत्रों में– ये सभी मानव विकास का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिनके सामने उन्हीं क्षेत्रों में प्राप्त गत समय की दीर्घकालीन उपलब्धियाँ फीकी पड़ जाती हैं।

वैज्ञानिक क्रिया के दो मुख्य अंग हैं, वस्तुनिष्ठता और सूक्ष्मता, जो विचार और शब्दाभिव्यक्ति में आवश्यक हैं। जो भी शोध इन दोनों अंगों में किसी भी क्षेत्र में किया जाएगा वही विज्ञान है। विज्ञान स्वयं किन्हीं तथ्यों में बन्द नहीं यद्यपि उसके विभाग–भौतिकी, रसायन, जीवशास्त्र या समाज शास्त्र अपने–अपने तथ्यों से बंधे हुए है। इन विभागों की परिधियाँ सीमित हैं किन्तु विज्ञान की परिधि असीम है। जब ये विभिन्न विभाग ऊँचे स्तरों पर एक दूसरे की सीमाएँ लाँघने लगते हैं वे खोज का विषय है जो प्राचीन काल में भारत का विज्ञान अध्यात्म विद्या था, जिसको स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरूषों ने आधुनिक युग में भविष्य के लिए अति महत्वपूर्ण बताया। अपनी स्वतंत्र भावना एवं मनोदशा और लक्ष्य में अध्यात्म विज्ञान द्वारा भारत में विकसित धर्म और आधुनिक विज्ञान एक दूसरे के समीप हैं। दोनों एक मिलन–बिन्दु पर दिखाई देते हैं। भौतिक विश्व की सृष्टि, कारण और प्रभाव की एकता, पदार्थ और ऊर्जा की एकता, संरक्षण, खगोलिक और इन्द्रियजनित विकास के सम्बन्ध में भी खगोलिकता और भौतिकता अनेक स्पर्शबिन्दु दर्शाती है। पश्चिम की धार्मिक विवेचना प्रकृति से परे की है।[8] वेदान्त और आधुनिक विज्ञान के सृष्टि–रचना सिद्धान्त, जैसे स्वामी विवेकानन्द ने कहा अन्तिम सत्य का आधारसिद्ध कारण स्वयंभू है।[9] तैत्तिरीय उपरिषद् ने ब्रह्म की परिभाषा एक महान वचन में दी जिसका सभी वैज्ञानिक स्वागत करेंगे। *यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तत् विजिज्ञानासस्व तत् ब्रह्मोजि* अर्थात् वही ब्रह्म है, उसी को ढूँढों, जहाँ से सृष्टि हुई, जिससे सृष्टि चलती है और अन्त में जिस में मिल जाती है। यह एक भावी सम्भावना की अभिव्यक्ति है कि जब पदार्थों के अन्तर का महत्व आधुनिक विज्ञान जान लेगा, तब वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर पदार्थ को आध्यात्मिक दिशा मिलेगी। क्योंकि वास्तविक तत्त्व केवल एक ही है, उसी में सब कुछ समाहित है। विज्ञान की गति भी उसी के भीतर है और अध्यात्म भी।

विज्ञान और अध्यात्म– दोनों विधायें अपने–अपने दृष्टिकोण से उसी एक तत्त्व की खोज करते है।[10] तत्व अन्तर और बाह्य के ज्ञान का एकीकरण है और भारत ने युगों पहले इसका अपने वेदान्त में संयुक्तज्ञान प्राप्त कर लिया था जो सम्पूर्ण वास्तविकता का पूर्ण ज्ञान है। वास्तविकता अपने अन्तर–बाह्य के बीच का भेद स्वयं नहीं जानता। अध्ययन, शोध और दैनिक जीवन की आसानी के लिए ये भेद तो मात्र मनुष्य के मन ने गढ़ लिए हैं। जैसे भौतिक विज्ञानों की विभिन्न शाखाएँ, भौतिक प्रकृति के अध्ययन के विभिन्न मार्ग मात्र हैं और ये सभी शाखाएँ, आगे बढ कर भौतिक विश्व के महा विज्ञान ब्रह्म के, पूर्ण वास्तविकता के, विज्ञान में एक हो जाते हैं। इस तरह वेदान्त ने ब्रह्म विज्ञान को ब्रह्मविद्या माना। मुण्डक उपनिषद ने ब्रह्म विद्या को सर्वविद्या प्रतिष्ठा कहा है जो सभी विद्याओं की प्रतिष्ठा है, आधार है।[11] गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं मेरे अनुसार क्षेत्र अथवा अनात्म का ज्ञान पदार्थों के बाह्य का ज्ञान और क्षेत्र के जानने वाले का ज्ञान पदार्थ के अन्तर का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है।[12] रोमां रोला कहते हैं वेदान्त की दृष्टि में समस्त क्रमविकास की क्रिया बनावट और रूप का क्रमशः विकास है, और अन्तर में अनन्त आत्म का उत्तरोत्तर बड़ा प्रकट होना है। यह पदार्थ का क्रमविकास और आत्मा का प्रकट होना है। वहाँ तो अनेकत्व को कोई स्थान ही नहीं है।[13]बीसवीं शताब्दी के जीवशास्त्र ने पुष्टि की है कि सजीव प्राणी की उत्पत्ति यह सृष्टि के अनुभव का अद्वितीय भाग है क्योंकि प्राणी में चेतना है। जीव विज्ञान की इसी प्रेरणा से इक्कीसवीं सदी का आधुनिक विज्ञान भी अपनी पारम्परिक अवधारणाओं और नियमों का अतिक्रमण करके चेतना जगत् में गति करने को आतुर दिखने लगा है। विज्ञान जगत् की यही आतुरता उसे अध्यात्म जगत् के समीप ला रही है जिससे दोनों में समन्वय की भावी सम्भावनाओं को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष

विज्ञान और अध्यात्म – दोनों एक–दूसरे से स्वतंत्र विधा होते हुये भी मानवीय कल्याण और विकास की श्रेष्ठतम अभिवृत्ति को धारण करती है। अनेक विषमताओं के साथ–साथ दोनों में कई उपयोगी समानताएँ भी देखने को मिलती है। मनुष्य जीवन में विज्ञान और अध्यात्म दोनों के महत्त्व और उपयोगिता को समान रूप से स्वीकारने की आवश्यकता है। जड़ और चेतन की भाँति दोनों एक–दूसरे के पूरक और सहयोगी है। विज्ञान हमारी जीवन सभ्यता को विकसित बनाता है तो अध्यात्म हमारी आन्तरिक अभिवृत्तियों को सुसंस्कृत बनाकर आत्म चेतना को ऊँचा उठाता है। दोनों की समान रूप से आवश्यकता और अनिवार्यता है। हमें जीवन में सत्यता और प्रामाणिकता को स्थापित करने के लिए तर्क, तथ्य और प्रमाणों की (जो कि विज्ञान की प्रक्रिया है) जितना

आवश्यकता है, उतनी ही आस्था, श्रद्धा और विश्वासों में गुँथी भाव संवेदनाओं को विकसित और श्रेष्ठ बनाने के लिए धर्म और अध्यात्म की भी आवश्यकता है। जीवन में केवल तर्क, तथ्य अथवा कोरी बौद्धिकता का ही स्थान नहीं है वरन् सजल भावनायें, प्रेम, सेवा, सहिष्णुता जैसी उदार प्रवृत्तियों से ही मनुष्य जीवन की गरिमा और सौन्दर्य प्रस्फूटित होता है। अतः विज्ञान और अध्यात्म दोनों की पूरकता को अपनाते हुये एक समग्र जीवन की अवधारणा को सामने लाना तथा दोनों के समन्वय के आधार पर ऐसे नये जीवन दर्शन की संरचना तैयार करना वर्तमान समय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है – जिसमें न तो कोरी बुद्धिवादी भौतिकवादी निरसता का अभिशाप हो और न ही अन्धश्रद्धा और उथली भावनाओं से भरी आस्थायें– मान्यतायें अथवा अन्ध परम्परायें हो। यह तो ऐसा सम्पूर्ण जीवन दर्शन हो जिसमें वैज्ञानिक जीवन दृष्टि के साथ आध्यात्मिक जीवन शैली का अनुपम संयोग हो तथा विज्ञान और अध्यात्म दोनों ज्ञान विधाओं को समान रूप से स्वीकारा गया हो।

त्र

गौतम वंदना सिंह, शोधार्थी, प्राच्य अध्ययन विभाग(हिन्दी), देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।

त्र

संदर्भसूचीः–

1. पं. श्रीराम शर्माआचार्य, 1995 वाङमय –विज्ञानऔर अध्यात्मपरस्परपूरक, खण्ड 23। अखण्डज्योतिसंस्थान, मथुरा। पृ. 5.21।

2. आचार्यश्रीराम शर्मा, मार्च एवं 1967 व्यक्ति के मूल्यांकनकामापदण्डबदलें।अखण्डज्योति, वर्ष 27, अंक 3, पृ.13।

3. J. Arthur Thomson 1911 – Introduction to Science. H. Holt, New york city , p. 205.

4. Friedrich Max Muller 1977 The Six Systems Indian Philosophy, AMS Press California Vol. I, P. 24.

5. पं. श्रीराम शर्माआचार्य 1995 वाङमय –विज्ञानऔर अध्यात्मपरस्परपूरक, खण्ड 23, पृ. 5.23।

6. पं. श्रीराम शर्माआचार्य1995 वाङमय –विज्ञानऔर अध्यात्मपरस्परपूरक, खण्ड 23, पृ. 5.24।

7. रंगनाथानन्द, स्वामी (1999) परिवर्तनशीलसमाज के लिए शाश्वतमूल्य।रामकृष्ण मठ, नागपुर। पृ. 137।

8. Vivekand S. 1962. The Complete works of Swami Vivekand, Vol. II P. 432. Advaita Ashram, Calcutta.

9. स्वामीविवेकानन्द 1989 –विवेकानन्दसाहित्य, खण्ड 3, पृ. 119। अद्वैतआश्रमकलकत्ता।

10. डॉ. राधाकृष्णन–वर्ष–पूर्वऔरपश्चिम, दिल्लीराजपाल एण्ड सन्स पृ. 42

11. मुण्डकोपनिषद–– 1/15 श्लोक।

12. भगवद्गीता– श्लोक संख्या 6.44।

13. Vivekand S. 1962. The Complete works of Swami Vivekand, Vol 1, PP.-Xiii-Xiv